International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(6): 25-27

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(6): 25-27
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 09-09-2020
Accepted: 23-10-2020

राधा देवी
शोधच्छात्रा, दयानन्द वैदिक अध्ययन पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, पंजाब, भारत

Corresponding Author:
राधा देवी
शोधच्छात्रा, दयानन्द वैदिक अध्ययन पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, पंजाब, भारत

उपनिषद् एवं निरंकारी सम्प्रदाय में व्यवहारिक आध्यात्मिकता

राधा देवी

प्रस्तावना

भारतवर्ष की अमूल्य निधि वेद जिसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ 'ज्ञान' है और संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् के रूप में चतुर्धा विभक्त वैदिक साहित्य के अन्तिम अर्थात् चतुर्थ भाग के रूप में विकसित गहन दार्शनिक अवधारणाओं से संवलित उपनिषद् है। उपनिषद् शब्द 'उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक सद् धतु से 'क्विप्' प्रत्यय जोड़ने से निष्पन्न हुआ। सद् धातु के तीन अर्थ है– विशरण–नाश होना, गति–प्राप्ति होना, अवसाद–शिथिल करना।

उपनिषद् का अर्थ है अध्यात्म विद्या। जिस विद्या के अध्ययन से संसार बीजभूता विद्या नष्ट होती है, ब्रह्म की प्राप्ति होती है और जन्म–मरण रूपी दुःख का शिथिलीकरण होता है वही आध्यात्मिक विद्या उपनिषद् है। आध्यात्मिक विद्या ही उपनिषद् है तो आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत उपनिषद् के पुनः–पुनः पठन–चिन्तन–मनन से जीवन में आध्यात्मिकता का व्यवहारिक रूप लेना स्पष्ट सा प्रतीत होता है। उपनिषदों में अनेक दार्शनिक विषयों का गहनतम विवरण है यहां पर ''व्यवहारिक आध्यात्मिकता'' को विषय के रूप में चयनित कर इस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

निरंकारी सम्प्रदाय एक आध्यात्मिक विचारधारा है– मानव को वास्तव में मानव बनाने की और मानव के परम लक्ष्य ब्रह्मप्राप्ति करवाने की। 'आध्यात्मिक विचारधारा' होने के कारण स्पष्ट है व्यवहार में आध्यात्मिकता का समावेश तो निश्चित तौर पर प्राप्त होना ही है। ''सम्पूर्ण अवतार बाणी'' और ''सम्पूर्ण हरदेव बाणी'' निरंकारी सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं जिनमें ब्रह्म, जीव, प्रकृति, माया आदि दार्शनिक विषय वर्णित हैं यहाँ पर ''व्यवहारिक आध्यात्मिकता'' को विषय के रूप में चुना गया है।

अध्यात्म

व्यवहारिक आध्यात्मिकता को यदि समझना है तो पहले अध्यात्म 'जिससे सम्बन्धित आध्यात्मिकता है' के विषय में जान लेते हैं जिसका वर्णन श्रीमद्भगवद् गीता में लिखा है–

''अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते''[1]

अक्षर अर्थात् अविनाशी आत्मा और परम ब्रह्म परमात्मा के स्वभाव को अर्थात् स्वभाव के अध्ययन को अध्यात्म कहते हैं। जो चेतन तत्व है उसका मनन, दर्शन ही अध्यात्म है। स्वयं और परब्रह्म परमात्मा के स्वभाव का अध्ययन, मनन–चिन्तन या स्वयं को जानने की प्रक्रिया अध्यात्म है। अध्यात्म शब्द अधि+आत्मन् से मिलकर बना है। अधि का अर्थ है– 'सम्बन्धित' और 'से ऊपर' अर्थात् आत्मा से सम्बन्धित और आत्मा से ऊपर परमात्मा इनसे सम्बन्धित ज्ञान अध्यात्म है और इस ज्ञान का कर्मों द्वारा प्रकट होना आध्यात्मिकता है।

उपनिषद् में ब्रह्म

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः[2]

निश्चय ही दिव्य पूर्ण पुरुष आकार रहित, समस्त जगत् के बाहर–भीतर विद्यमान, अजन्मा, प्राण रहित, मन रहित होने के कारण विशुद्ध है। अतः जीव आत्मा से अत्यन्त श्रेष्ठ है।

''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म''[3]

परमात्मा सत्य स्वरूप अर्थात् कभी न परिवर्तित होने वाली शाश्वत सत्ता, ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त है। ऐसे ही स्वरूप का वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है।

''विज्ञानमानन्दं ब्रह्म''[4]

एतदतिरिक्त ब्रह्म के अवयव रहित सर्वनियन्ता, कर्त्ता, सर्वज्ञ स्वरूप का वर्णन करते हुआ लिखा है–

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणात्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।[5]

हाथ–पैर से रहित होने पर भी सब कुछ ग्रहण करने वाला, शीघ्रता से गति करने वाला, नेत्र रहित होने पर सर्वद्रष्टा, कान रहित होने पर भी सर्वश्रेष्ठ श्रोता, जानने में नहीं आने वाली वस्तु का भी ज्ञाता किन्तु सर्वज्ञाता ब्रह्म को जानने वाला कोई नहीं है, उसे महान् आदि पुरुष कहते हैं।

निरंकारी सम्प्रदाय में ब्रह्म

'निरंकार है एहो इक्को जिसदा कोई आकार नहीं
जिसदा उरला कंढा कोई नहीं जिसदा परला पार नहीं।''[6]

यह निरंकार परमात्मा आकार रहित है, इसका न आदि है ,न अन्त है अर्थात् न तो यह कहीं से प्रारम्भ होता है और न ही कहीं इसकी समाप्ति होती है। अनादि अनन्त परमात्मा सर्वव्यापक है। अन्यत्र लिखा गया है–

''कन्नां बाझों सभ दी सुणदा हत्थां बाझों कार करे
बिन लत्तां दे तुरदा फिरदा पिंगला पर्वत पार करे
बिनां नक दे लए वाशना बिना जीभा राग सुणांदा ए
बिन अक्खों एह सभ कुछ वेखे पेट बिना एह खांदा ए''[7]

निराकार परमात्मा बिन कान सुनता है, बिन हाथ कार्य करता है, बिन पैर सर्वत्र चलता है, बिन नाक के सब कुछ सूंघता है, बिन जिह्वा के सर्वश्रेष्ठ गायक है, बिन नेत्र सर्वद्रष्टा और बिन पेट के भोक्ता है।
ऐसे ही ब्रह्म स्वरूप का निरूपण करते हुए सर्वव्यापकता और सामर्थ्य के विषय में वर्णित किया गया है–

''असीम है तू अनन्त है तू सबमें ही है व्यापक तू
कारण रूप जगत का तू है सृष्टि का संचालक तू
सच्चिदानंद विराट स्वरूप पूरण से भी पूरण तू
अजन्मा है अविनाशी है ईश्वर नित्य सनातन तू''[8]

यह परमात्मा असीम, अनन्त, अडोल, सर्वव्यापक, सर्वकारणरूप, सत्–चित–आनन्दस्वरूप, अखण्ड, अविनाशी, अजन्मा, नित्य, निरंजन, निर्गुण, सत्य, सनातन, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, बेमिसाल, बेहिसाब हैं।

उपनिषद एवं निरंकारी सम्प्रदाय में आत्मा

दोनों में ही आत्मा को ब्रह्म का अंश बताकर जीव–ब्रह्म का ऐक्य निरूपित किया गया है। जब विशाल परमात्मा एक घट अर्थात् देह में आता है तो आत्मा कहलाता है और अज्ञानवश स्वयं के स्वरूप को भूल जाता है तब आत्मा और परमात्मा में भेद नज़र आता है किन्तु जब ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु इसको ब्रह्म का उपदेश देते हैं तो अपने निजस्वरूप को पहचान कर ब्रह्म से अभेद हो जाती है। जिस अवस्था के बारे में लिखा है–

''अयमात्मा ब्रह्म''[9]

यह आत्मा ब्रह्म है। इस आत्मा को निजस्वरूप का स्मरण कराते हुए सद्गुरु समझाते हैं–

''निरंकार प्रभू नूं जेकर समझो हर थां हाज़र नाज़र ए
एसे दी है ख़लकत सारी एह ख़लकत दा कादर ए
शस्त्र एहनूं कर नहीं सकदा हवा तों सकदा सुक नहीं
पाणी एहनूं गाल ना सक्के अग्ग तों सकदा मुक नहीं
तूं वी इसदा अंग है बन्दे इसे जोत दी जोती एं''[10]

परमात्मा के स्वरूप को समझाने के पश्चात् स्वयं की पहचान करवाते हुए ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु कह रहे हैं कि तू (आत्मा) भी इसी परमात्मा का अंश है इसी परमात्मा रूपी ज्योत की ज्योति है अर्थात् आत्मा का अलग अस्तित्व नहीं है। ब्रह्मज्ञान प्राप्ति पश्चात् यह आत्मा ब्रह्म रूप बन जाती है। आत्मा और परमात्मा के ज्ञान के साथ ही आध्यात्मिकता का प्रारम्भ हो जाता है और सर्वत्र भगवद् दृष्टि हो जाती है।

''सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, अयम आत्मा ब्रह्म''[11]

यह सब कुछ ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है। जब ऐसा ज्ञान हो जाता है तो यह आध्यात्मिक अवस्था है अब आध्यात्मिकता के व्यवहारिक रूप का वर्णन करते हैं।

उपनिषद एवं निरंकारी सम्प्रदाय में व्यवहारिक आध्यात्मिकता

ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु से ब्रह्मज्ञान प्राप्ति उपरान्त आत्मा का परमात्मा में होना आध्यात्मिक अवस्था है, परमार्थतः यह सत्य है किन्तु संसार की एक व्यवहारिक सत्ता है तो संसार में रहते हुए व्यवहार करना होता है तो मेरा व्यवहार, मेरा जीने का ढंग, रहन–सहन, मेरा कर्म इन सबमें आध्यात्मिकता शामिल हो जाये तो यह व्यवहारिक आध्यात्मिकता हो जायेगी।

''जो कुछ दिसदै नज़री आउंदै
एसे दा है सगल–पसार''[12]

यह अवस्था जहां दृष्टिगोचर होने वाली हर वस्तु में ब्रह्म का पसार नज़र आता है व्यवहारिक आध्यात्मिकता है। इसका एक दृष्टान्त अन्यत्र भी दृष्टिगोचर होता है–

''रब है मेरे अंग–संग वसदा
इसदे अन्दर वस्सां मैं
इस विच खावां पीवां पहिना
इस विच रोवां हस्सां मैं''[13]

परमात्मा का अहसास करते हुए हर कार्य इस ब्रह्म के अन्दर हो रहा है तो यह आध्यात्मिकता का व्यवहारिक रूप तो है किन्तु इसमें आनन्द केवल स्वयं को अनुभव हो रहा है किन्तु जब यह आनन्द दूसरों के प्रति व्यवहार में शामिल होने लगे तो वास्तविक व्यवहारिकता है।

''इक नूं जाणके घट–घट अन्दर सभनां दे नाल प्यार करन
इक नूं जाणके घट–घट अन्दर सभनां दा सत्कार करण।।[14]

यह वास्तविक व्यवहारिकता है जहां सभी को ब्रह्म स्वरूप मानकर प्यार, सत्कार दिया जा रहा है। प्यार–नम्रता– सहनशीलता– विशालता– समदृष्टि वाले भावों का व्यवहार में शामिल होना नितान्त आवश्यक है। यह तो सामने वाले के प्रति व्यवहार की बात

हुई अब किसी भी परिस्थिति में मनोस्थिति का वर्णन किया जा रहा है।

''ज्ञानीजन को यश अपयश का भय न कभी सताता है
हर्ष शोक व जन्म मरण से ऊपर वो उठ जाता है।''[15]

चाहे यश हो, अपयश हो, हर्ष हो, शोक हो, लाभ हो, हानि हो, दुःख हो, सुख हो, जन्म हो, मरण हो, कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो किन्तु ज्ञानीजन इन सब परिस्थिति में समत्व की भावना मन में रखते हुए विचलित नहीं होता हे। यह है व्यवहारिक आध्यात्मिकता में मन की अवस्था।

दृष्टिकोण

जब आध्यात्मिकता का जीवन में प्रवेश होता है और व्यवहारिक रूप लेती है तो दृष्टिकोण परिवर्तित होकर सब में आत्मभाव उत्पन्न हो जाता है जिसका वर्णन ईशोपनिषद् में किया गया है–

''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुयश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते''[16]

जो सभी प्राणियों को अपने आप में देखता है और स्वयं को सभी में देखता है वहां कोई घृणा नहीं होती। अर्थात् सब अपना ही रूप हो जाते है तो घृणा का भाव नहीं रहता अपितु प्रेम भावना परिपक्व हो जाती है। आगे इसी अवस्था को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

''यस्मिन् सर्वणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुयश्यतः।''[17]

जिस अवस्था में ज्ञाता (ब्रह्मज्ञाता) के लिये सभी प्राणी आत्मरूप ही हो जाते है वहां पर कैसा मोह, कैसा शोक केवल एकत्व ही दृष्टिगोचर होता है। एकत्व की स्थापना व्यवहारिक आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा है।

निष्कर्ष रूप में आत्मा–परमात्मा रूपी अध्यात्म ज्ञानोपरान्त जीवन में आध्यात्मिकता को प्राथमिकता देते हुए व्यवहार में कर्म में शामिल करना ही आध्यात्मिकता का व्यवहारिक रूप है, जहां पर व्यवहार, मनोवस्था और दृष्टिकोण में समत्व और एकत्व का भाव परिपक्व होकर व्यवहारिक आध्यात्मिक के रूप में प्रकट होता है।

सन्दर्भ

1. श्री मद्भगवद् गीता – 8/3
2. मुण्डकोपनिषद् – 2/1/2
3. तैत्तिरीयोपनिषद् – 2/1
4. बृहदारण्यकोपनिषद् – 3/9/28
5. श्वेताश्वतरोपनिषद् – 3/19
6. सम्पूर्ण अवतार वाणी – शब्द–12/1–2
7. वही – शब्द–256/1–4
8. सम्पूर्ण हरदेव वाणी – शब्द–2/3–6
9. बृहदारण्यकोपनिषद् – 2/5/19
10. सम्पूर्ण अवतार वाणी – शब्द–189/1–5
11. माण्डूक्योपनिषद् – मन्त्र–2
12. सम्पूर्ण अवतार वाणी – शब्द–11/3
13. वही – शब्द – 321/1–2
14. वही– शब्द – 228/1–2
15. सम्पूर्ण हरदेव वाणी– शब्द – 222/5–6
16. ईशावास्योपनिषद्– मन्त्र– 6
17. वही– मन्त्र –7